Epistemology of Indian Knowledge Systems: Pramāṇas and Ways of Knowing

भारतीय ज्ञान परंपराओं का ज्ञानमीमांसा: प्रमाण और ज्ञान के मार्ग

Research Review Journal of Cultural Heritage and Traditions
double-blind peer-reviewed and refereed online bi-annual Journal
ISSN (online): XXXX-XXX (applied)
Vol-1 No.1 (Jan-Jun 2026) 30-35
©The Author(s) 2026
https://rrjcht.in/

RRJCHT Bi-annual Journal

Received: 10 Sep, 2025
Revised: 31 Oct, 2025
Accepted: 2 Nov, 2025
Published: 24 Feb, 2026

*Nisha Kumari

R. H. Patel Arts & Comm. College, Ahmedabad.

Abstract: *The epistemology of Indian Knowledge Systems presents a pluralistic and integrative framework for understanding knowledge and its validity. Central to this framework is the concept of pramāṇa, the means through which valid knowledge (pramā) is attained. Unlike singular or exclusively empirical models of knowing, Indian epistemological traditions recognize multiple sources of knowledge, including perception, inference, and authoritative testimony. This study examines the foundational principles of Indian epistemology by analyzing the theory of pramāṇas and their interpretations across major philosophical schools such as Nyāya, Mīmāṃsā, Vedānta, Buddhism, and Jainism. The paper highlights how Indian Knowledge Systems balance empirical observation, rational inquiry, and experiential insight, reflecting a holistic approach to knowing. It also explores the contemporary relevance of these epistemological frameworks in interdisciplinary research, education, and comparative philosophy. By foregrounding pramāṇas as dynamic and context-sensitive modes of knowledge, the study underscores the enduring significance of Indian ways of knowing in both traditional and modern intellectual discourses.*

Keywords: *Indian Knowledge Systems; Epistemology; Pramāṇas; Ways of Knowing; Indian Philosophy*

Abstract in Hindi Language: *भारतीय ज्ञान परंपराओं की ज्ञानमीमांसा ज्ञान और उसकी वैधता को समझने के लिए एक बहुलवादी और समन्वयात्मक ढाँचा प्रस्तुत करती है। इस ढाँचे का केंद्रीय तत्व प्रमाण की अवधारणा है—वे साधन जिनके माध्यम से वैध ज्ञान (प्रमा) की प्राप्ति होती है। एकल या केवल अनुभववादी ज्ञान मॉडलों से भिन्न, भारतीय ज्ञानमीमांसीय परंपराएँ ज्ञान के अनेक स्रोतों को स्वीकार करती हैं, जिनमें प्रत्यक्ष, अनुमान और प्रामाणिक साक्ष्य (शब्द) शामिल हैं। यह अध्ययन प्रमाण सिद्धांत का विश्लेषण करते हुए तथा न्याय, मीमांसा, वेदांत, बौद्ध और जैन जैसे प्रमुख दार्शनिक विद्यालयों में उसकी व्याख्याओं की पड़ताल करके भारतीय ज्ञानमीमांसा के मूल सिद्धांतों का परीक्षण करता है। यह लेख दर्शाता है कि भारतीय ज्ञान परंपराएँ अनुभवजन्य अवलोकन, तर्कसंगत अनुसंधान और अनुभूतिजन्य अंतर्दृष्टि के बीच संतुलन स्थापित करती हैं, जो ज्ञान के प्रति एक समग्र दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित करता है। साथ ही, यह अंतर्विषयी अनुसंधान, शिक्षा और तुलनात्मक दर्शन में इन ज्ञानमीमांसीय ढाँचों की समकालीन*

*Corresponding Author
Nisha Kumari, R. H. Patel Arts & Comm. College, Ahmedabad.
nishu.kumariarts142@gmail.com

Scan and Access

Creative Commons Non Commercial CC BY-NC: This article is distributed under the terms of the Creative Commons Attribution-Non Commercial 4.0 License (http://www.creativecommons.org/licenses/by-nc/4.0/) which permits non-Commercial use, reproduction and distribution of the work without further permission provided the original work is attributed.

प्रासंगिकता का भी अन्वेषण करता है। प्रमाणों को ज्ञान के गतिशील और संदर्भ-संवेदनशील साधनों के रूप में केंद्र में रखकर, यह अध्ययन पारंपरिक और आधुनिक—दोनों बौद्धिक विमर्शों में भारतीय ज्ञान-पद्धतियों के स्थायी महत्व को रेखांकित करता है।

Keywords: *भारतीय ज्ञान परंपराएँ; ज्ञानमीमांसा; प्रमाण; ज्ञान के मार्ग; भारतीय दर्शन*

1 | परिचय

भारतीय ज्ञान परंपराओं में ज्ञानमीमांसा ज्ञान की प्रकृति, उसके स्रोतों और उसकी वैधता से संबंधित है तथा यह ऐसे मूलभूत प्रश्नों पर विचार करती है कि सत्य ज्ञान क्या है और उसे विश्वसनीय रूप से कैसे प्राप्त किया जा सकता है। भारतीय दार्शनिक परंपराओं में ज्ञान को मात्र सूचना या विश्वास के रूप में नहीं देखा गया है; बल्कि उसे *प्रमा*—अर्थात् ऐसा वैध ज्ञान—माना गया है जो यथार्थ के अनुरूप हो और त्रुटि से मुक्त हो। वैधता पर यह विशेष जोर भारतीय ज्ञानमीमांसा को सामान्य मत (*अप्रमा*) से अलग करता है और ज्ञान संबंधी जिज्ञासा को दार्शनिक चिंतन के केंद्र में स्थापित करता है (Chatterjee & Datta, 1984)।

प्रमा की अवधारणा *प्रमाण* से अविभाज्य रूप से जुड़ी हुई है, अर्थात् वे साधन जिनके माध्यम से वैध ज्ञान उत्पन्न होता है। भारतीय चिंतकों ने इस बात पर बल दिया कि ज्ञान को व्यक्तिपरक दावे के बजाय विश्वसनीय संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं द्वारा औचित्य प्राप्त होना चाहिए। जैसा कि बिमल एन. मटिलाल स्पष्ट करते हैं, भारतीय ज्ञानमीमांसा ने वैध ज्ञान को भ्रम, संदेह या स्मृति से अलग करने के लिए कठोर मानदंड विकसित किए, जिससे सत्य दावों के मूल्यांकन के लिए एक वस्तुनिष्ठ ढाँचा निर्मित हुआ (Matilal, 1986)। इस अर्थ में वैध ज्ञान वही है जो वस्तु को उसके यथार्थ स्वरूप में प्रकट करे और संसार के साथ सफल व्यावहारिक या बौद्धिक संलग्नता को संभव बनाए।

भारत की विभिन्न दार्शनिक परंपराओं ने, अपने-अपने तात्त्विक मतभेदों के बावजूद, ज्ञान की वैधता को लेकर इस मूल चिंता को साझा किया। उदाहरण के लिए, न्याय दर्शन ने *प्रमा* को "ऐसा सत्य ज्ञान जो वस्तु को उसके वास्तविक स्वरूप में ग्रहण करे" के रूप में परिभाषित किया और वैधता की परीक्षा के लिए तर्कशास्त्रीय विश्लेषण पर बल दिया। वेदांत ने समान ज्ञानमीमांसीय साधनों को स्वीकार करते हुए वैध ज्ञान की अवधारणा को परम सत्य के मुक्तिदायक ज्ञान (*ज्ञान*) तक विस्तारित किया और इस प्रकार ज्ञानमीमांसा को मोक्षशास्त्र से जोड़ा (Radhakrishnan, 1951)। इन भिन्नताओं के बावजूद, इस बात पर व्यापक सहमति थी कि ज्ञान का आधार विश्वसनीय साधनों पर होना चाहिए और उसे तर्कसंगत परीक्षण में टिकना चाहिए।

भारतीय ज्ञानमीमांसा की एक अन्य विशिष्ट विशेषता इसका नैतिक और अस्तित्वगत चिंताओं के साथ एकीकरण है। ज्ञान को केवल वर्णनात्मक शुद्धता के लिए ही नहीं, बल्कि उसके रूपांतरणकारी सामर्थ्य के लिए भी महत्त्व दिया गया। शास्त्रीय ग्रंथों में बार-बार यह प्रतिपादित किया गया है कि अज्ञान (*अविद्या*) दुःख का मूल कारण है, जबकि वैध ज्ञान सही आचरण, नैतिक स्पष्टता और अंततः मोक्ष (*मोक्ष*) की ओर ले जाता है (Dasgupta, 1932)। यह दृष्टिकोण ज्ञानमीमांसा को मानव कल्याण और आत्मबोध से संबंधित व्यापक दार्शनिक परियोजना के भीतर स्थापित करता है।

अतः भारतीय ज्ञान परंपराओं में ज्ञानमीमांसा की आधारभूमि *प्रमा* को सत्याभिमुख और वैध संज्ञान के रूप में समझने तथा उन परिस्थितियों पर निरंतर चिंतन करने पर आधारित है जिनमें ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है। वैधता के लिए सुव्यवस्थित मानदंड विकसित करके और ज्ञानमीमांसा को नैतिक तथा अस्तित्वगत ढाँचों में अंतर्निहित करके, भारतीय दार्शनिक परंपराएँ ज्ञान की समस्या के प्रति एक व्यापक और स्थायी दृष्टिकोण प्रस्तुत करती हैं।

2 | प्रमाण सिद्धांत (वैध ज्ञान के साधन)

प्रमाणों का सिद्धांत भारतीय ज्ञान परंपराओं में ज्ञानमीमांसीय चिंतन का मूल आधार है। *प्रमाण* से आशय उन विश्वसनीय साधनों या उपकरणों से है जिनके माध्यम से *प्रमा*—अर्थात् वैध ज्ञान—उत्पन्न होता है। शास्त्रीय भारतीय दार्शनिक केवल यह जानने में रुचि नहीं रखते थे कि क्या जाना गया है, बल्कि इस बात में भी कि ज्ञान का औचित्य कैसे सिद्ध होता है और उसे त्रुटि, संदेह या भ्रम से कैसे अलग किया जाए। इसी कारण भारतीय

ज्ञानमीमांसा ने उन संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का सुव्यवस्थित और कठोर विश्लेषण विकसित किया जो सत्य ज्ञान को उत्पन्न करती हैं (Chatterjee & Datta, 1984)।

अपने सरलतम रूप में, *प्रमाण* वही है जो यथार्थ के अनुरूप संज्ञान उत्पन्न करे। न्याय दर्शन *प्रमाण* को "वैध ज्ञान का उपकरणात्मक कारण" परिभाषित करता है और इस बात पर बल देता है कि ज्ञान आकस्मिक विश्वास या व्यक्तिपरक मत से नहीं, बल्कि विश्वसनीय संज्ञानात्मक क्रियाओं से उत्पन्न होना चाहिए (Matilal, 1986)। ज्ञान की विश्वसनीयता पर यह जोर भारतीय दार्शनिक विमर्श में औचित्य को केंद्रीय स्थान देता है और आधुनिक ज्ञानमीमांसा में विकसित हुई चिंताओं का पूर्वाभास कराता है।

प्रमाणों का दार्शनिक महत्व उनकी बहुलवादी संरचना में निहित है। उन ज्ञानमीमांसीय प्रणालियों के विपरीत जो ज्ञान के किसी एक स्रोत को विशेषाधिकार देती हैं, भारतीय दर्शन अनेक प्रमाणों को स्वीकार करता है, जिनमें प्रत्येक अपने उपयुक्त क्षेत्र में वैध है। प्रत्यक्ष (*प्रत्यक्ष*), अनुमान (*अनुमान*) और प्रामाणिक साक्ष्य (*शब्द*) को अधिकांश दर्शनों में स्वीकार किया गया है, जबकि उपमान (*उपमान*), अर्थापत्ति (*अर्थापत्ति*) और अनुपलब्धि (*अनुपलब्धि*) जैसे अतिरिक्त प्रमाण विशिष्ट परंपराओं द्वारा मान्य हैं। यह बहुलवाद अनुभवजन्य अवलोकन, तर्कसंगत विचार, भाषिक संप्रेषण और अनुभूतिजन्य अंतर्दृष्टि को समाहित करने वाले एक समावेशी ज्ञान-दृष्टिकोण को दर्शाता है (Dasgupta, 1932)।

विभिन्न दार्शनिक परंपराओं ने प्रमाणों की सीमा और प्राधिकार की व्याख्या अपने-अपने ढंग से की, जिससे भारतीय चिंतन में ज्ञानमीमांसीय विमर्श की गहराई प्रकट होती है। न्याय दर्शन ने सत्य दावों की जाँच के लिए तर्क और अनुमान को अनिवार्य उपकरण माना, जबकि मीमांसा ने *शब्द*—विशेषतः वेदों—को इंद्रिय अनुभव से परे विषयों में ज्ञान का स्वतःसिद्ध स्रोत माना। वेदांत ने इस ढाँचे का और विस्तार करते हुए परम सत्य के मुक्तिदायक ज्ञान को, शास्त्रीय साक्ष्य और प्रत्यक्ष अनुभूति पर आधारित होने की स्थिति में, ज्ञानमीमांसीय रूप से वैध ठहराया (Radhakrishnan, 1951)। इन भिन्नताओं के बावजूद, सभी परंपराओं में इस बात पर सहमति थी कि ज्ञान की वैधता मान्य प्रमाणों के माध्यम से ही स्थापित होनी चाहिए।

प्रमाण सिद्धांत की एक अन्य विशिष्ट विशेषता इसका व्यावहारिक और नैतिक जीवन के साथ गहरा संबंध है। वैध ज्ञान का अन्वेषण केवल सैद्धांतिक शुद्धता के लिए नहीं, बल्कि सही आचरण का मार्गदर्शन करने और अज्ञान को दूर करने की क्षमता के लिए किया गया। भारतीय दार्शनिकों का निरंतर मत रहा है कि मिथ्या ज्ञान से त्रुटि और दुःख उत्पन्न होता है, जबकि वैध ज्ञान प्रभावी कर्म और अंततः मोक्ष (*मोक्ष*) की ओर ले जाता है (Dasgupta, 1932)। इस प्रकार भारतीय ज्ञान परंपराओं में ज्ञानमीमांसा नैतिकता, आचरण और मानव कल्याण की चिंताओं से अविभाज्य है।

संक्षेप में, प्रमाणों का सिद्धांत ज्ञान के प्रति एक परिष्कृत और संदर्भ-संवेदनशील दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। संज्ञान के स्रोतों, सीमाओं और वैधता का सुव्यवस्थित विश्लेषण करके भारतीय ज्ञानमीमांसा एक ऐसा व्यापक ढाँचा प्रदान करती है जो अनुभवजन्य प्रमाण, तर्कसंगत अन्वेषण और अनुभूतिजन्य समझ के बीच संतुलन स्थापित करता है। यह ढाँचा बहुलवाद, औचित्य और ज्ञान की प्रकृति से जुड़े समकालीन दार्शनिक विमर्शों के लिए आज भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण बना हुआ है।

3 | भारतीय दर्शन में प्रमुख प्रमाण

भारतीय ज्ञानमीमांसा में वैध ज्ञान (*प्रमाण*) के अनेक साधनों को स्वीकार किया गया है, जिनमें *प्रत्यक्ष* (Perception), *अनुमान* (Inference) और *शब्द* (Authoritative Testimony) अधिकांश दार्शनिक परंपराओं में सर्वाधिक मान्य हैं। ये तीनों प्रमाण भारतीय ज्ञान परंपराओं की ज्ञानमीमांसीय आधारशिला का निर्माण करते हैं और इंद्रिय अनुभव, तर्कसंगत विवेचन तथा भाषिक या साक्ष्यात्मक ज्ञान को एक संतुलित ढाँचे में समेकित करते हैं। शास्त्रीय चिंतकों ने इन प्रमाणों को परस्पर प्रतिस्पर्धी नहीं, बल्कि एक-दूसरे के पूरक ज्ञान-पथों के रूप में देखा, जहाँ प्रत्येक अपने-अपने क्षेत्र में वैध है (Chatterjee & Datta, 1984)।

प्रत्यक्ष (Pratyakṣa) को ज्ञान का सबसे तात्कालिक और प्राथमिक स्रोत माना गया है। इसका आशय इंद्रियों और उनके विषयों के संपर्क से उत्पन्न उस प्रत्यक्ष संज्ञान से है, जो न तो भाषिक मध्यस्थता पर निर्भर होता है और न ही अनुमान पर। न्याय दर्शन के दार्शनिकों ने प्रत्यक्ष का सूक्ष्म विश्लेषण किया, ताकि वैध प्रत्यक्ष ज्ञान को भ्रम और त्रुटि से अलग किया जा सके। उन्होंने उचित इंद्रिय–विषय संपर्क, दोषों का अभाव और निश्चित संज्ञान (*सविकल्पक प्रत्यक्ष*) जैसी शर्तों पर बल दिया (Matilal, 1986)। इस प्रकार भारतीय ज्ञानमीमांसा प्रत्यक्ष को केवल कच्ची संवेदना नहीं, बल्कि एक सुव्यवस्थित संज्ञानात्मक प्रक्रिया मानती है, जो बाह्य जगत के बारे में विश्वसनीय ज्ञान प्रदान कर सकती है।

अनुमान (Anumāna) वह प्रमाण है जिसके माध्यम से ज्ञात तथ्यों के आधार पर तर्क द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से ज्ञान प्राप्त किया जाता है। न्याय दर्शन में अनुमान की केंद्रीय भूमिका है, जहाँ इसका विश्लेषण *हेतु* (कारण), *पक्ष* (विषय) और *साध्य* (जिसे सिद्ध करना है) जैसे अवयवों के माध्यम से किया गया है। धुएँ से अग्नि की उपस्थिति का निष्कर्ष निकालना इसका प्रसिद्ध उदाहरण है। भारतीय तर्कशास्त्रियों ने इस बात पर बल दिया कि वैध अनुमान *व्याप्ति*—अर्थात् कारण और निष्कर्ष के बीच सार्वत्रिक सहसंबंध—पर निर्भर करता है (Dasgupta, 1932)। इस प्रकार अनुमान भारतीय ज्ञानमीमांसा के तर्कसंगत और विश्लेषणात्मक आयाम का प्रतिनिधित्व करता है, जो प्रत्यक्ष से आगे बढ़ते हुए भी तर्कसंगत आधार बनाए रखता है।

शब्द (Śabda) से आशय विश्वसनीय वाचिक संप्रेषण के माध्यम से प्राप्त ज्ञान से है। अफवाह या मत से भिन्न, शब्द को ऐसे साक्ष्य के रूप में परिभाषित किया गया है जो किसी सक्षम और सत्यनिष्ठ स्रोत से उत्पन्न हो। कई दर्शनों में, विशेषतः मीमांसा और वेदांत में, शास्त्रीय साक्ष्य—विशेषकर वेद—को इंद्रिय अनुभव से परे विषयों, जैसे नैतिक कर्तव्य (*धर्म*) और परम तत्त्व (*ब्रह्म*) के ज्ञान के लिए स्वतंत्र और वैध प्रमाण माना गया है (Radhakrishnan, 1951)। साथ ही, शब्द केवल पवित्र ग्रंथों तक सीमित नहीं है; विश्वसनीय वक्ता द्वारा किया गया दैनिक भाषिक संप्रेषण भी ज्ञान का वैध स्रोत माना जाता है। यह दृष्टि भाषा को साझा और संचयी ज्ञान के एक महत्वपूर्ण माध्यम के रूप में मान्यता देती है।

समग्र रूप से, प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द भारतीय दर्शन की बहुलवादी ज्ञानमीमांसा को प्रतिपादित करते हैं। इंद्रिय अनुभव, तर्कसंगत विवेचन और प्रामाणिक संप्रेषण—तीनों को ज्ञानात्मक वैधता प्रदान की जाती है, जिससे ज्ञान को किसी एक संज्ञानात्मक माध्यम तक सीमित नहीं किया जाता। यह समेकित दृष्टिकोण भारतीय ज्ञान परंपराओं की दार्शनिक परिपक्वता को रेखांकित करता है, जहाँ संदर्भ-संवेदनशील और कठोर विश्लेषण पर आधारित साधनों के माध्यम से ज्ञान की वैधता स्थापित की जाती है। ऐसा ढाँचा आज भी ज्ञानात्मक बहुलवाद और औचित्यपूर्ण ज्ञान की प्रकृति पर समकालीन विमर्शों के लिए महत्त्वपूर्ण अंतर्दृष्टियाँ प्रदान करता है।

4 | भारतीय दार्शनिक परंपराओं में प्रमाण

भारतीय ज्ञानमीमांसा का विकास विभिन्न दार्शनिक परंपराओं के बीच निरंतर संवाद और विमर्श के माध्यम से हुआ, जहाँ प्रत्येक परंपरा ने *प्रमाण* की अपनी विशिष्ट व्याख्या प्रस्तुत की, किंतु सभी में *प्रमा*—अर्थात् वैध ज्ञान—की चिंता समान रूप से विद्यमान रही। किसी एकरूप सिद्धांत के स्थान पर, भारतीय ज्ञान परंपराएँ एक बहुलवादी ज्ञानमीमांसीय परिदृश्य प्रस्तुत करती हैं, जिसमें विभिन्न दर्शन अपने-अपने तात्त्विक और मोक्षसंबंधी दृष्टिकोणों के आधार पर अलग-अलग प्रमाणों को स्वीकार करते हैं (Chatterjee & Datta, 1984)।

न्याय दर्शन को प्रायः ज्ञानमीमांसा के सर्वाधिक व्यवस्थित विवेचन के लिए जाना जाता है। यह चार प्रमाणों को स्वीकार करता है—प्रत्यक्ष (*प्रत्यक्ष*), अनुमान (*अनुमान*), उपमान (*उपमान*) और शब्द (*शब्द*)। न्याय दार्शनिकों ने तार्किक कठोरता पर विशेष बल दिया और *व्याप्ति* (सार्वत्रिक सहसंबंध) पर आधारित अनुमान का विस्तृत सिद्धांत विकसित किया। न्याय के अनुसार ज्ञान तभी वैध माना जाता है जब वह कारणात्मक रूप से विश्वसनीय और तार्किक रूप से औचित्यपूर्ण हो, जिससे ज्ञानमीमांसा दार्शनिक चिंतन के केंद्र में आ जाती है (Matilal, 1986)।

मीमांसा दर्शन, विशेष रूप से पूर्व मीमांसा, *शब्द* प्रमाण को सर्वोच्च महत्व प्रदान करता है, खासकर वेदों की प्रामाणिकता को। मीमांसा चिंतकों का मत था कि वेद *अपौरुषेय*—अर्थात् अनादि और मानव-निर्मित नहीं—हैं, इसलिए वे कर्मकांड और धर्म से संबंधित विषयों में स्वयंसिद्ध ज्ञान का स्रोत हैं। यद्यपि प्रत्यक्ष और अनुमान को अनुभवजन्य ज्ञान के लिए स्वीकार किया जाता है, फिर भी इंद्रिय अनुभव से परे नैतिक और विधिक विषयों में शास्त्रीय साक्ष्य को स्वतंत्र और अनिवार्य प्रमाण माना गया है (Dasgupta, 1932)।

वेदांत दर्शन मीमांसा की ज्ञानमीमांसा को आधार बनाकर उसे तात्त्विक और मोक्षपरक दिशा में पुनर्संयोजित करता है। वेदांत सामान्यतः प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द—तीनों प्रमाणों को स्वीकार करता है, किंतु विशेष रूप से उपनिषदों के *शब्द* को *ब्रह्म*—परम सत्य—के ज्ञान का मुख्य साधन मानता है। इसके साथ ही, वेदांत प्रत्यक्ष अनुभूति (*अपरोक्षानुभव*) को ज्ञान की पराकाष्ठा के रूप में देखता है, जिससे ज्ञानमीमांसा का सीधा संबंध आध्यात्मिक साधना और मोक्ष (*मोक्ष*) से स्थापित होता है (Radhakrishnan, 1951)।

बौद्ध ज्ञानमीमांसा प्रमाण सिद्धांत का एक समालोचनात्मक पुनर्गठन प्रस्तुत करती है। दिङ्नाग और धर्मकीर्ति जैसे शास्त्रीय बौद्ध दार्शनिकों ने केवल दो प्रमाणों—प्रत्यक्ष (*प्रत्यक्ष*) और अनुमान (*अनुमान*)—को स्वीकार किया। उन्होंने *शब्द* की स्वतंत्र प्रामाणिकता को अस्वीकार करते हुए तर्क दिया कि वाचिक साक्ष्य अंततः अनुमान पर ही आधारित होता है। बौद्ध ज्ञानमीमांसा क्षणिकता, निरात्मवाद और दुःख-निवृत्ति के व्यावहारिक उद्देश्य पर बल देती है, जिससे ज्ञानमीमांसा तर्क और नैतिक साधना—दोनों से जुड़ जाती है (Matilal, 1986)।

जैन दर्शन *अनेकांतवाद* (अनेक दृष्टियों का सिद्धांत) और *स्याद्वाद* (सापेक्ष कथन) पर आधारित एक विशिष्ट ज्ञानमीमांसीय दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। जैन परंपरा प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द सहित अनेक प्रमाणों को स्वीकार करती है, किंतु इस बात पर बल देती है कि समस्त ज्ञान आंशिक और दृष्टिकोण-आश्रित होता है। यह ज्ञानमीमांसीय विनम्रता सत्य के बहुलवादी बोध की ओर ले जाती है, जहाँ विभिन्न दृष्टिकोण मिलकर यथार्थ की अधिक समग्र समझ प्रदान करते हैं (Dasgupta, 1932)।

समग्र रूप से, ये सभी दार्शनिक परंपराएँ भारतीय ज्ञान परंपराओं की ज्ञानमीमांसीय विविधता को प्रदर्शित करती हैं। यद्यपि प्रमाणों की संख्या और स्थिति को लेकर इनमें मतभेद हैं, फिर भी सभी परंपराएँ ज्ञान और उसकी वैधता के कठोर विश्लेषण के प्रति प्रतिबद्ध हैं। ज्ञानमीमांसा के प्रति यह संवादात्मक और बहुलवादी दृष्टिकोण भारतीय दर्शन का वैश्विक ज्ञान सिद्धांतों में एक अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है।

5 | भारतीय ज्ञान-पद्धतियों की समकालीन प्रासंगिकता

प्रमाण सिद्धांत पर आधारित भारतीय ज्ञान-पद्धतियाँ आज भी समकालीन बौद्धिक और व्यावहारिक संदर्भों में अत्यंत प्रासंगिक बनी हुई हैं। ये केवल शास्त्रीय दर्शन या धार्मिक अध्ययन तक सीमित नहीं हैं, बल्कि ज्ञान के प्रति ऐसे बहुलवादी और समन्वयात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती हैं जो आधुनिक अंतर्विषयी अनुसंधान के साथ गहराई से जुड़ते हैं। विद्वानों का बढ़ता हुआ मत है कि भारतीय ज्ञान परंपराएँ संज्ञान के वैकल्पिक मॉडल प्रदान करती हैं, जो प्रमुख पाश्चात्य ज्ञानमीमांसाओं का पूरक बनते हैं, क्योंकि इनमें प्रत्यक्ष, अनुमान, साक्ष्य और अनुभव को संदर्भ-संवेदनशील तथा परस्पर सहायक ज्ञान-पथों के रूप में महत्व दिया गया है (Matilal, 1986)।

शिक्षा और शिक्षाशास्त्र के क्षेत्र में भारतीय ज्ञानमीमांसा ने अपनी समग्र दृष्टि के कारण नया महत्व प्राप्त किया है। अनेक प्रमाणों की स्वीकृति उन समकालीन शैक्षिक सिद्धांतों के अनुरूप है जो अनुभवात्मक अधिगम, संवादात्मक शिक्षण और चिंतनशील अन्वेषण पर बल देते हैं। भारतीय परंपराएँ इस बात पर जोर देती हैं कि ज्ञान की वैधता केवल अमूर्त तर्क से नहीं, बल्कि जीवनानुभव और नैतिक अनुप्रयोग से भी सिद्ध होती है। यह दृष्टिकोण मूल्य-आधारित शिक्षा और शिक्षार्थी-केंद्रित शिक्षण पर चल रही वर्तमान चर्चाओं को दिशा देता है, विशेषकर भारत में हाल के शैक्षिक सुधारों के संदर्भ में, जहाँ पाठ्यक्रमों में भारतीय ज्ञान परंपराओं के एकीकरण को प्रोत्साहित किया गया है (भारत सरकार, 2020)।

भारतीय ज्ञान-पद्धतियाँ **अंतर्विषयी अनुसंधान** में भी महत्वपूर्ण योगदान देती हैं, विशेष रूप से संज्ञानात्मक विज्ञान, मनोविज्ञान और मनो-दर्शन जैसे क्षेत्रों में। न्याय और बौद्ध ज्ञानमीमांसा में विकसित प्रत्यक्ष (*प्रत्यक्ष*) और अनुमान (*अनुमान*) की अवधारणाओं का अध्ययन आज के संज्ञान, बोध और तर्क-विचार से जुड़े विमर्शों के संदर्भ में किया जा रहा है। बिमल एन. मटिलाल सहित अनेक विद्वानों का तर्क है कि भारतीय दर्शन में प्रत्यक्ष और भ्रांति का विश्लेषण आधुनिक युग की उन चिंताओं का पूर्वाभास कराता है, जो आशय, संदर्भ और वस्तुनिष्ठता की सीमाओं से संबंधित हैं (Matilal, 1986)। इसी प्रकार, जैन दर्शन का *अनेकांतवाद* बहुलवाद और प्रणालीगत चिंतन के संदर्भ में विचारणीय रहा है और सामाजिक व वैज्ञानिक अनुसंधान में जटिलता तथा परस्पर विरोधी दृष्टिकोणों के प्रबंधन के लिए उपयोगी अंतर्दृष्टियाँ प्रदान करता है (Dasgupta, 1932)।

नैतिकता, विधि और सार्वजनिक विवेक के क्षेत्र में भी भारतीय ज्ञानमीमांसा का योगदान उल्लेखनीय है। *शब्द*—अर्थात् विश्वसनीय साक्ष्य—और नैतिक विवेक पर दिया गया बल अधिकार, विश्वास और प्रामाणिकता के मूल्यांकन के लिए एक वैकल्पिक ढाँचा प्रस्तुत करता है। समकालीन विद्वानों का मत है कि साक्ष्य को ज्ञान का स्रोत मानने पर भारतीय विमर्श आधुनिक समाजों में विशेषज्ञता, विश्वसनीयता और संप्रेषण से जुड़े प्रश्नों के लिए अत्यंत प्रासंगिक है, विशेषकर सूचना-अधिकता और डिजिटल मीडिया के युग में (Chatterjee & Datta, 1984)।

भारतीय ज्ञान-पद्धतियों की आधुनिक व्याख्याएँ **तुलनात्मक दर्शन और वैश्विक विमर्श** में भी उनकी प्रासंगिकता को उजागर करती हैं। भारतीय ज्ञानमीमांसा को किसी पूर्व-आधुनिक या रहस्यवादी परंपरा के रूप में देखने के बजाय, समकालीन अध्ययन उसे एक कठोर और विश्लेषणात्मक प्रणाली के रूप में प्रस्तुत करता है, जो पाश्चात्य ज्ञान सिद्धांतों के साथ आलोचनात्मक संवाद कर सकती है। यह तुलनात्मक संलग्नता ज्ञान संबंधी पदानुक्रमों को चुनौती देती है और एक अधिक समावेशी वैश्विक दर्शन को प्रोत्साहित करती है, जिसमें अनेक बौद्धिक परंपराओं को मान्यता मिलती है (Radhakrishnan, 1951)।

समग्र रूप से, भारतीय ज्ञान-पद्धतियों की समकालीन प्रासंगिकता उनकी अनुकूलनशीलता, बहुलवाद और नैतिक आधार में निहित है। अनुभव, तर्क और साक्ष्य को जोड़ने वाले समन्वित ज्ञानमीमांसीय ढाँचे प्रदान करके, भारतीय ज्ञान परंपराएँ आधुनिक शिक्षा, अंतर्विषयी अनुसंधान और

वैश्विक दार्शनिक संवाद को महत्वपूर्ण दृष्टिकोण प्रदान करती हैं। इन परंपराओं की निरंतर पुनर्व्याख्या यह दर्शाती है कि भारतीय ज्ञानमीमांसा आज भी एक जीवंत परंपरा है, जो समकालीन बौद्धिक और सामाजिक चुनौतियों का सामना करने में स्थायी रूप से प्रासंगिक बनी हुई है।

6 | निष्कर्ष

भारतीय ज्ञान परंपराओं की ज्ञानमीमांसा *प्रमाण* को वैध संज्ञान के विश्वसनीय साधनों के रूप में स्वीकार करते हुए ज्ञान की एक समृद्ध और बहुलवादी समझ प्रस्तुत करती है। *प्रमा* को त्रुटि, संदेह और मात्र मत से अलग करके, भारतीय दार्शनिक परंपराओं ने सत्य और औचित्य के मूल्यांकन के लिए कठोर मानदंड विकसित किए। प्रत्यक्ष, अनुमान और प्रामाणिक साक्ष्य जैसे अनेक प्रमाणों की स्वीकृति एक समावेशी दृष्टिकोण को दर्शाती है, जो मानव ज्ञान की जटिलता को स्वीकार करती है और ज्ञान को किसी एक स्रोत या पद्धति तक सीमित नहीं करती।

प्रमुख दार्शनिक परंपराओं में प्रमाणों के अध्ययन से विविधता के साथ-साथ साझा बौद्धिक प्रतिबद्धताएँ भी स्पष्ट होती हैं। जहाँ न्याय ने तार्किक विश्लेषण पर बल दिया, वहीं मीमांसा ने शास्त्रीय साक्ष्य की प्रामाणिकता को प्रतिष्ठित किया; वेदांत ने ज्ञान को आध्यात्मिक अनुभूति से जोड़ा; बौद्ध दर्शन ने प्रत्यक्ष और अनुमान को प्राथमिकता दी; और जैन दर्शन ने अनेकांतवाद के माध्यम से ज्ञानात्मक बहुलवाद को आगे बढ़ाया। इन भिन्नताओं के बावजूद, सभी परंपराएँ वैध ज्ञान की शर्तों पर निरंतर संवाद में संलग्न रहीं, जो भारतीय ज्ञानमीमांसा की गहराई और परिष्कार को प्रदर्शित करता है।

समकालीन संदर्भ में, भारतीय ज्ञान-पद्धतियाँ शिक्षा, अंतर्विषयी अनुसंधान, नैतिकता और वैश्विक दार्शनिक विमर्श के लिए महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टियाँ प्रदान करती रहती हैं। अनुभवात्मक अधिगम, तर्कसंगत अन्वेषण और विश्वसनीय संप्रेषण पर उनका बल ज्ञान की विविधता, विश्वसनीयता और संदर्भगत समझ से जुड़ी आधुनिक चिंताओं के अनुरूप है। भारतीय ज्ञानमीमांसा को एक जीवंत और अनुकूलनशील बौद्धिक परंपरा के रूप में पहचानना, उसकी दार्शनिक अखंडता को बनाए रखते हुए वर्तमान चुनौतियों से सार्थक संवाद संभव बनाता है।

अंततः, प्रमाणों का सिद्धांत वैश्विक ज्ञानमीमांसा के अध्ययन में भारतीय ज्ञान परंपराओं का एक केंद्रीय योगदान सिद्ध होता है। ज्ञान के प्रति इसका बहुलवादी, संदर्भ-संवेदनशील और नैतिक रूप से आधारित दृष्टिकोण न केवल तुलनात्मक दर्शन को समृद्ध करता है, बल्कि यह समझने के लिए भी स्थायी संसाधन प्रदान करता है कि मनुष्य किस प्रकार जानता है, अर्थ ग्रहण करता है और संसार में कर्म करता है।

संदर्भ

[1] Chatterjee, S. C., & Datta, D. M. (1984). *An introduction to Indian philosophy* (8th ed.). Calcutta: University of Calcutta.

[2] Dasgupta, S. N. (1932). *A history of Indian philosophy* (Vol. 1). Cambridge: Cambridge University Press.

[3] Government of India. (2020). *National Education Policy 2020*. Ministry of Education. https://www.education.gov.in

[4] Matilal, B. N. (1986). *Perception: An essay on classical Indian theories of knowledge*. Oxford: Clarendon Press.

[5] Radhakrishnan, S. (1951). *Indian philosophy* (Vols. 1–2). London: George Allen & Unwin.

Cite this article

Epistemology of Indian Knowledge Systems: Pramāṇas and Ways of Knowing: **भारतीय ज्ञान परंपराओं का ज्ञानमीमांसा: प्रमाण और ज्ञान के मार्ग**. (2026). *Research Review Journal of Cultural Heritage and Traditions*, *1*(1), 30-35. https://rrjcht.in/index.php/rrjcht/article/view/5